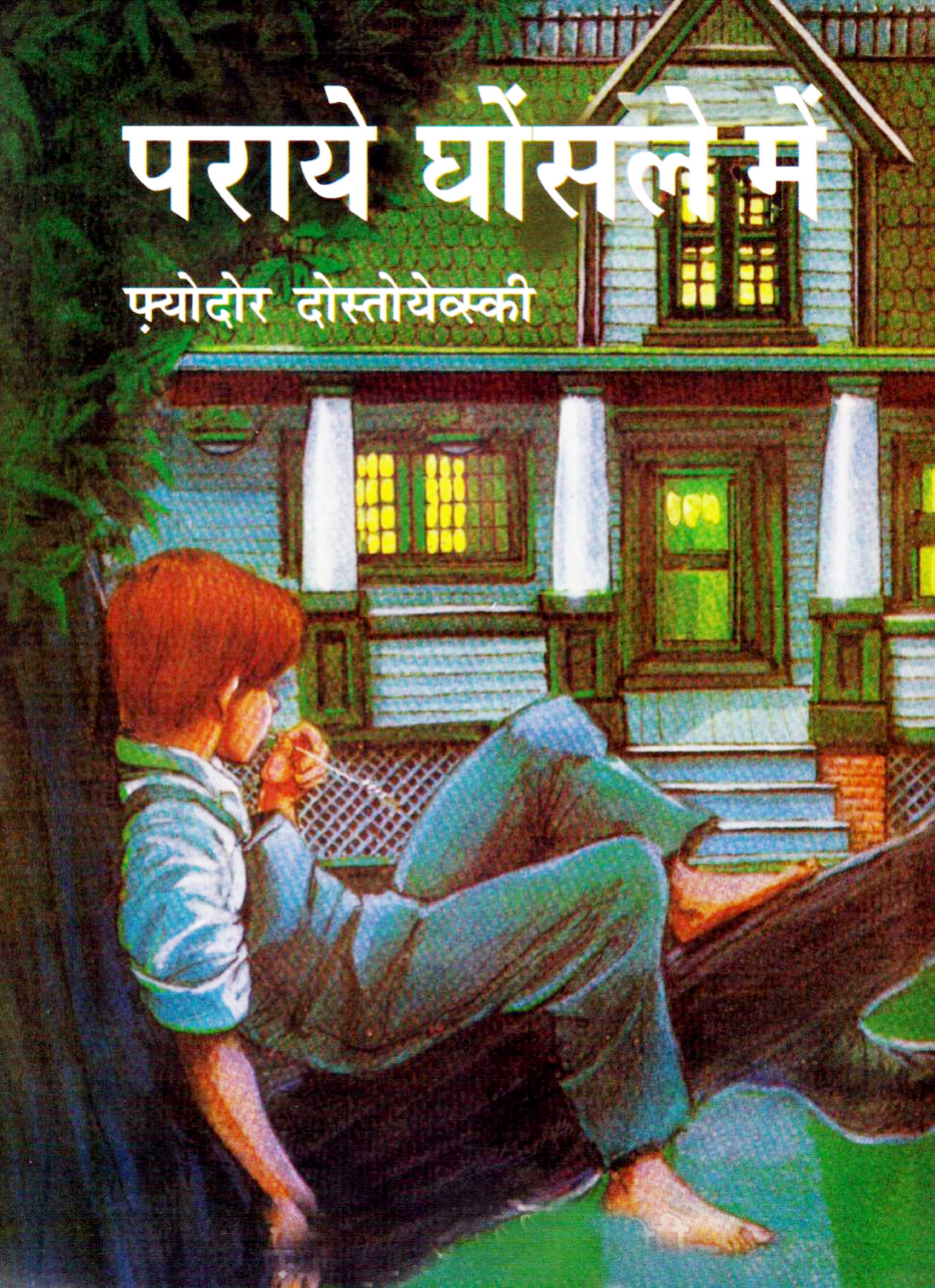
पराये घोंसले में

फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की



मूल्य : रु. 20.00

प्रथम संस्करण : 2004
पुनर्मुद्रण : जनवरी 2010

प्रकाशक

अनुराग ट्रस्ट

डी - 68, निरालानगर
लखनऊ - 226020

आवरण एवं रेखांकन :
रामबाबू

लेज़र टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन
मुद्रक : वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ

पुस्तक और इसके लेखक के बारे में

उन्नीसवीं शताब्दी के ज़ारकालीन रूसी सामाजिक जीवन में व्याप्त अकथ पीड़ाओं, मारक दुखों, निष्ठुर अन्याओं और बोझिल उदासियों की तथा व्यक्तित्वों पर उनके प्रभावों का **फ़्योदोर मिखाइलेविच दोस्तोयेव्स्की** ने अपने उपन्यासों में इतना प्रभावी चित्रण प्रस्तुत किया कि आज तक दुखों और सामाजिक विसंगतियों के मनोमस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभावों के चित्रण के मामले में पूरी दुनिया मे उन्हें बेजोड़ माना जाता है। दोस्तोयेव्स्की सामाजिक न्याय और उच्च नैतिक मानदण्डों के उत्कट पक्षधर थे और समाज में इनका अभाव ही उन्हें प्रेरित करता था कि वे इनके व्यापक चित्रण द्वारा लोगों को उद्वेलित और प्रेरित करें कि वे इनके बारे में, और इन्हें बदलने के बारे में सोचे।

दोस्तोयेव्स्की की इसी बेचैनी और चिन्ता ने 'अपराध और दण्ड', 'करामाज़ोव बन्धु' और 'बौड़म' जैसे भारी-भरकम और विश्वप्रसिद्ध उपन्यासों को जन्म दिया। संसार में शायद ही दूसरा कोई ऐसा लेखक हो, जिसने लोगों की वेदनाओं, उनके विचारों के मंथन और उनकी अन्तरात्मा की व्यथा का इतना मार्मिक चित्रण किया हो। दोस्तोयेव्स्की की अधिकांश पुस्तकें गम्भीर हैं और आम पाठकों और बच्चों के लिए उन्हें समझना आसान नहीं है। लेकिन उनकी प्रायः हर रचना में ऐसे अंश हैं जिन्हें वह अपनी नन्ही बेटी और उसकी सहेलियों को पढ़कर सुनाया करते थे और जिन्हें सुनकर बच्चों के मनों में भावनाओं का उद्वेग उठता था। दोस्तोयेव्स्की चाहते थे कि कभी खाली समय मिले, तो इन अंशों को जमा करके एक अलग पुस्तक के रूप में प्रकाशित करें। लेकिन वह ऐसा नहीं कर सके। 1881 में साठ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया। उसके दो वर्ष बाद ही एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था : 'रूसी बच्चों को! फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की की रचनाओं से।' इसमें 'क्रिसमस और बालक' और 'किसान मरेइ' कहानियाँ तथा 'किशोर', 'नेतच्का नेज़्वानोवा :' 'अपराध और दण्ड' और 'करामाज़ोव बन्धु' उपन्यासों के अंश शामिल थे। तब से यह पुस्तक कई बार छपी।

दोस्तोयेव्स्की को बाल-आत्मा का बहुत अच्छा ज्ञान था। बचपन की अपनी यादों को ही वह पर्याप्त नहीं मानते थे। अपने एक मित्र को उन्होंने लिखा : "बच्चों के बारे में जो कुछ भी आप जानते हों, मुझे लिखें. .. उनकी आदतें, रोचक घटनाएँ, उत्तर, शब्द, उनके लक्षण, विश्वास, उनकी बुरी हरकतें और भोलापन... " बच्चों के प्रति अपने रुख़ के बारे में उनका कहना था : "मैं उनका अध्ययन करता हूँ, सारी उम्र करता आया हूँ और अन्तरतम से उन्हें प्यार करता हूँ।"

लेकिन उनका यह रुख़ सबसे अच्छी तरह उनके ही एक वयस्क नायक के शब्दों में व्यक्त हुआ है : "निर्दोष पीड़ित बच्चे के एक आँसू के लिए मैं स्वर्ग का टिकट विनम्रतापूर्वक लौटाता हूँ।" सोवियत कवि सेर्गेई

मिख़ल्कोव ने इस उक्ति के बारे में अपने विचार इन शब्दों में प्रकट किये हैं : "असहाय जीव को पहुँचाये गये ज़रा से दुख, उसके एक आँसू से ही बुरी तरह व्यथित होने वाले व्यक्ति के हृदय में बच्चों के प्रति जो गहरा प्रेम है, उस प्रेम ने ही लेखक से ये शब्द लिखवाये होंगे।" 1971 में जब दोस्तोयेव्स्की की 150वीं वर्षगाँठ मनायी जा रही थी तो उस अवसर पर उनकी कहानियों और उपन्यास-अंशों का एक संकलन 'बच्चों के लिए' नाम से प्रकाशित हुआ। उसी की भूमिका में मिख़ल्कोव ने उपरोक्त बात लिखी थी। यहाँ प्रस्तुत कहानी इसी पुस्तक से ली गयी है।

यह एक ज़मींदार और एक ग़रीब किसान औरत की अवैध सन्तान की कहानी है। लड़के को दयावश ऊँचे घराने के बच्चों के बोर्डिंग स्कूल में दाख़िला दिला दिया जाता है। वहाँ उसे अमीर घरों के लड़कों के हाथों कदम-कदम पर उत्पीड़न और अपमान का सामना करना पड़ता है। बोर्डिंग का प्रमुख तुशार उसे काउण्टों, सीनेटरों के बच्चों से अलग एक छोटी सी कोठरी में रखता है और ऊपर से यह एहसान भी जताता है कि वह ग़रीबों-अमीरों के बच्चों में कोई भेद नहीं करता। बच्चे की माँ अपनी पोटली में कुछ माल्टे, बिस्किट और फ्रेंच बंद लिये उससे मिलने आती है। बोर्डिंग के प्रमुख और उसकी पत्नी माँ के ऊपर खूब अहसान जताते हैं और वह कृतज्ञता के बोझ से दबी हुई दयनीयता का व्यवहार करती है जिससे बच्चा बहुत आहत और अपमानित महसूस करता है। सहपाठियों द्वारा मजाक उड़ाये जाने के अंदेशे से भी वह लगातार भयभीत है। इस तनाव में वह माँ से प्यार करना तो दूर, उससे रूखा बरताव करता है और उस पर झुँझलाता भी है लेकिन माँ के चले जाने के बाद दुख से उसका कलेजा ऐंठने लगता है। जो प्रेम उसने प्रकट नहीं किया, वह उसके मन को कचोटता रहता है।

कहानी अमीरी-गरीबी में बँटे समाज में, विशेष तौर पर बच्चों की त्रासद स्थिति पर सोचने के लिए पाठक को मजबूर करती है। ग़रीब बच्चों को अक्सर उन बच्चों के हाथों अपमान का सामना करना पड़ता है जो बेहतर घरों से आते हैं। हालाँकि खुशहाल घरों के भी सभी बच्चे ऐसा नहीं करते। उनमें से कुछ सहृदय भी होते हैं, पर कुछ तो ग़रीब बच्चों को तरह-तरह से अपमानित कर ही देते हैं। आज भी यदि कोई ग़रीब आदमी बेहतर शिक्षा के लिए पेट काटकर अपने बच्चे को महँगे स्कूलों में दाखिला दिला देता है, तो वहाँ सहपाठियों और शिक्षकों तक के हाथों उस बच्चे को तरह-तरह के, स्थूल और सूक्ष्म, प्रत्यक्ष और परोक्ष अपमानों का सामना करना पड़ता है। कुछ नहीं तो हालात ही दिमाग पर लगातार दबाव बनाये रखते हैं और बच्चे के कोमल मन को क्षत-विक्षत करने के साथ ही उसके व्यक्तित्व को कुचल देते हैं।

यह कहानी बड़ों के साथ ही बच्चों को भी उन सामाजिक हालात पर सोचने के लिए मजबूर करती है, जो कहानी के मुख्य पात्र की पीड़ा और उसकी माँ के वेदनापूर्ण जीवन के कारण हैं। बच्चे इस सवाल पर सोचेंगे कि उनका व्यवहार अधिक न्यायपूर्ण और मानवीय हो सकता है और कल, जब वे बड़े होंगे तो ऐसे हालात को बदलने के लिए भी कुछ करने की सोच सकते हैं।

पराये घोंसले में



घंटा दो य़ा बल्कि तीन सेकेंड में ही एक बार ज़ोर से और बिल्कुल स्पष्टतः बज रहा था, लेकिन यह मुनादी का घंटा नहीं था, यह तो एक प्रिय नाद था, जो मंद लय में गुंजायमान हो रहा था। सहसा मुझे लगा कि यह तो जाना-पहचाना नाद है, कि संत निकोलस के गिरजे में घंटा बज रहा है। मास्को का यह पुराना लाल गिरजा हमारे बोर्डिंग स्कूल के सामने ही था, ज़ार अलेक्सेई मिख़ाइलविच* ने इसे बनवाया था–बेलबूटेदार, बहुत सारे गुम्बदों और स्तम्भों वाला गिरजा। मुझे यह भी ख़्याल आया कि अभी-अभी ईस्टर सप्ताह बीता है और अब स्कूल के बगीचे में पतले-पतले भोज वृक्षों पर नई-नई निकली हरी-हरी पत्तियाँ कंपायमान हो रही होंगी। ऐसा ही दिन था तब। हमारी कक्षा में ढलती दुपहरी की तिरछी धूप पड़ रही थी। कक्षा के बाईं ओर वाले छोटे से कमरे में, जहाँ साल भर पहले तुशार ने मुझे काउंटों और सीनेटरों के बच्चों से अलग ले जाकर रखा था, एक मेहमान बैठी थीं। हाँ, हाँ, मैं किसी ऊँचे

[सन् 1645 से 1676 तक रूस का जार। - सं0

घराने का नहीं था, तो भी मेरे पास एक महिला आईं थीं। जब से मैं तुशार के यहाँ रह रहा था, पहली बार मुझसे मिलने कोई आया था। जैसे ही वह अंदर आई थीं मैं उन्हें पहचान गया था : यह मेरी माँ थी, हालाँकि उस दिन से जब गाँव के गिरजे में उन्होंने मुझे युखारिस्त दिलाया था और गुम्बद के नीचे एक कबूतर उड़ा था, मैंने उन्हें कभी नहीं देखा था। हम दोनों अकेले बैठे थे और मैं उन्हें आँखें चुराकर अजीब तरह से घूर रहा था। बाद में, कई वर्ष पश्चात मुझे पता चला था कि तब वह अपनी मर्जी से, जिन लोगों के संरक्षण में उन्हें रखा गया था, उनसे चोरी-चोरी ही मास्को आई थीं, हालाँकि उनके पास पैसे भी बहुत थोड़े थे, तो भी वह मात्र मुझे देख पाने को ही आई थीं। यह भी एक अजीब बात थी कि अंदर आकर और तुशार से बात करने के बाद उन्होंने मुझे एक शब्द भी नहीं कहा कि वह मेरी माँ हैं। वह मेरे पास बैठी थीं, और मुझे आश्चर्य हो रहा था कि वह इतना कम बोलती हैं। वह अपने साथ एक गठरी लाई थीं। उन्होंने गठरी खोली, उसमें छह माल्टे थे, कुछ प्रियानिक** और दो मामूली फ्रेंच बंद। मुझे उनका फ्रेंच बंद लाना अच्छा न लगा, और मैंने बुरा सा मुँह बनाकर कहा कि हमें यहाँ भोजन बहुत अच्छा मिलता है और हमें रोज़ाना चाय के साथ फ्रेंच बंद मिलते हैं।

"कोई बात नहीं, बेटा, मैं तो अपने भोलेपन में सोच रही थी कि शायद उन्हें वहाँ स्कूल में खाना अच्छा न मिलता हो। बुरा न मानना, बच्चे।"

"जी, वह अन्तनीना वसील्येव्ना (तुशार की पत्नी) को भी बुरा लगेगा और साथी भी मेरा मज़ाक उड़ाएँगे..."

"तो, नहीं लोगे क्या? ले लो, खा लेना।"

"अच्छा, रहने दीजिए..."

उनकी सौगात को मैंने हाथ तक न लगाया, माल्टे और प्रियानिक मेरे सामने मेज पर रखे थे और मैं आँखें झुकाए, पर बड़े आत्मगौरव की भावना के साथ बैठा हुआ

[**शहद, मुरब्बे आदि के साथ बनाये जाने वाले रूसी बिस्कुट। - सं0]

था। कौन जाने, हो सकता है, मेरा तब यह छिपाने का बिल्कुल भी मन न रहा हो कि उनके यों मिलने आने से मैं दूसरे लड़कों के सामने शर्मिन्दा हूँ; या कम से कम उन्हें यह जताना चाहता था ताकि समझ जाएँ कि : 'देखिए, आपके कारण मेरा अपमान हो रहा है और आप स्वयं भी यह नहीं समझती हैं।'' ओह, मैं उन दिनों तुशार के पीछे ब्रुश उठाए चलता था, उसके कोट की धूल झाड़ता था! मैं यह भी कल्पना कर रहा था कि माँ के जाते ही मुझे लड़कों से कैसी-कैसी बातें सुननी होंगी और हो सकता



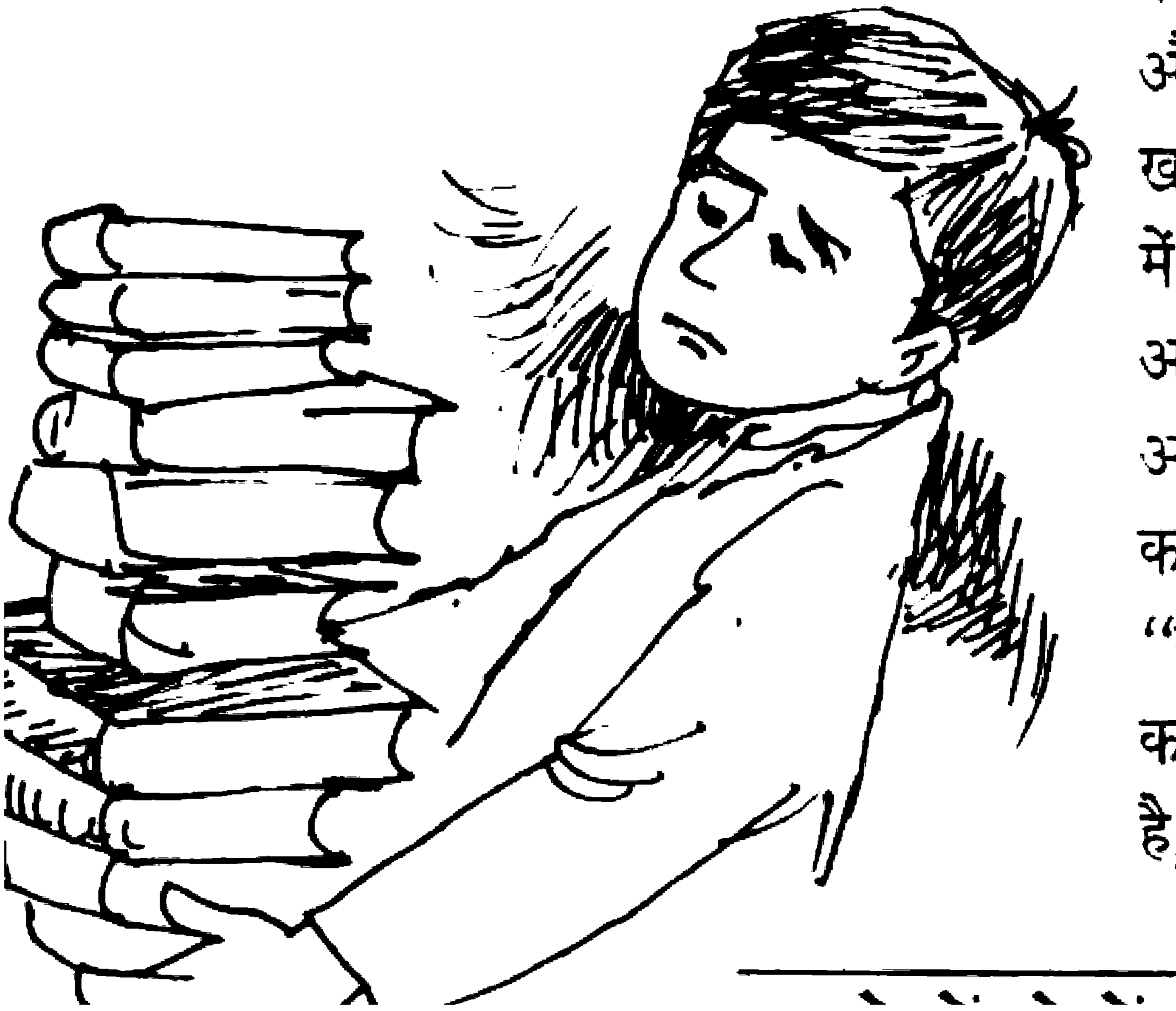
है, स्वयं तुशार भी मेरी खिल्ली उड़ाए। सो मेरे मन में माँ के लिए रत्ती भर भी सद्भावना न थी। कनखियों से मैं उनका पुराना सा, गाढ़े रंग का लिबास देख रहा था, उनके हाथ कैसे खुरदरे थे–मज़दूरों जैसे, और जूतियाँ तो बिल्कुल ही घटिया थीं; चेहरा दुबला पड़ गया था, माथे पर झुर्रियाँ पड़ने लगी थीं। हाँ, यह सच है कि बाद में, माँ के चले जाने पर शाम को अन्तनीना वसील्येव्ना ने कहा था : ''आपकी **maman** अवश्य की कभी देखने में ख़ासी अच्छी रही होंगी''।

ऐसे ही हम बैठे हुए थे और सहसा नौकरानी अगाफ़्या ट्रे लिए अंदर आई। ट्रे

पर कॉफ़ी का कप रखा हुआ था। दोपहर के खाने के बाद का समय था और इस समय तुशार दम्पति सदा अपनी बैठक में कॉफ़ी पिया करते थे। परंतु माँ ने धन्यवाद कहा और काफ़ी नहीं ली। बाद में मुझे पता चला कि उन दिनों वह काफ़ी बिल्कुल ही नहीं पीती थीं, क्योंकि उससे उनका जी घबराने लगता था। बात यह थी कि तुशार और उसकी पत्नी मन ही मन, प्रत्यक्षतः यह सोच रहे थे कि माँ को मुझसे मिलने की अनुमति देकर उन्होंने बहुत बड़ा उपकार किया है, अतः माँ के लिए कॉफ़ी का कप भेजना तो उनकी मानवीयता का पराक्रम ही था, जो उनकी सभ्यता और यूरोपीय चाल-चलन के लिए अत्यंत मान की बात थी। और माँ ने मानो जान-बूझकर कॉफ़ी से इनकार कर दिया था।

मुझे तुशार के पास बुलाया गया, और उसने यह आज्ञा दी कि मैं अपनी सभी कापियाँ और पुस्तकें ले जाकर माँ को दिखाऊँ, ताकि "वह देख लें कि आपने मेरे स्कूल में कितना ज्ञान पाया है।" तभी अन्तनीना वसील्येव्ना ने होंठ सिकोड़कर और मुँह बनाते हुए उपहास के स्वर में कहा :

"लगता है कि आपकी **maman** को हमारी कॉफ़ी पसंद नहीं आई।"



मैंने कापियाँ उठाईं और माँ को दिखाने ले चला। कक्षा में काउंटो और सीनेटरों के बच्चे झुंड बनाए खड़े थे और चोरी-चोरी मेरे कमरे में झाँक रहे थे। मुझे तुशार की आज्ञा का अक्षरशः पालन करना अच्छा ही लगा। मैं एक-एक करके कापियाँ खोलने और बताने लगा : "यह देखिए– यह फ्रांसीसी व्याकरण का पाठ है, यह इमला हमने लिखी है, यह रहे क्रियाओं के रूप, यह



भूगोल की कापी है, यूरोप के प्रमुख नगरों और संसार के सभी भागों का वर्णन,'' इत्यादि। आधे घंटे तक मैं एकसुरी, धीमी आवाज में बताता गया और सारा समय बड़े शिष्ट बालक की भाँति आँखें झुकाए रहा। मैं जानता था कि माँ की समझ में यह सब नहीं आता, हो सकता है कि उन्हें पढ़ना-लिखना भी न आता हो, परंतु मुझे अपनी यही भूमिका बहुत अच्छी लग रही थी। किन्तु मैं उन्हें थका न पाया–वह सुनती जा रही थीं, एक बार भी मुझे टोका नहीं, बड़े ध्यान से और आदर भाव से सुनती रहीं। अंततः मैं स्वयं ही ऊब उठा और मैंने बोलना बंद कर दिया। हाँ, माँ की आँखों में तब उदासी थी और चेहरे पर दयनीय भाव।

आख़िर वह जाने को उठ खड़ी हुईं। सहसा स्वयं तुशार अंदर चला आया और भोंडे दम्भ से पूछने लगा : ''क्या आप अपने पुत्र की सफलता पर संतुष्ट हैं ?'' माँ कुछ बुदबुदाने लगीं और कृतज्ञता प्रकट करने लगीं; अन्तनीना वसील्लेव्ना भी आ गईं। माँ उन दोनों से विनती करने लगीं; ''अनाथ को न छोड़ना–अब तो इसे अनाथ ही समझिए, इसे आप अपने आश्रय में रखे रहें...'' उनकी आँखें भर आईं और वह उन दोनों के सामने कमर तक झुक गईं, ठीक वैसे ही जैसे मामूली लोग जब बड़े लोगों

से कुछ माँगने आते हैं, तो झुक-झुककर सलाम करते हैं। तुशार और उसकी पत्नी को इसकी आशा तक न थी, प्रत्यक्षतः अन्तनीना वसील्येव्ना का दिल पिघल गया और उसने, निस्संदेह, तभी कॉफ़ी के कप के बारे में अपना मत बदल लिया। तुशार और भी अधिक अहंमन्यता के साथ, मानवीयता दर्शाते हुए बोला कि वह "बच्चों में भेदभाव नहीं करता, कि यहाँ सभी उसके अपने बच्चे हैं, और वह उनका पिता, कि वह मेरे साथ काउंटों पर सीनेटरों के बच्चों के समान ही बर्ताव करता है और इसकी कद्र करनी चाहिए", इत्यादि, इत्यादि। माँ झुक-झुककर सलाम करती जा रही थीं, पर फिर वह सकपका गईं और आख़िर मेरी ओर मुड़ीं। उनकी आँखों में आँसू चमके, बोलीः

"अलविदा, मेरे लाल !"

और उन्होंने मुझे चूमा, नहीं, मैंने उन्हें अपना गाल चूमने दिया। वह तो शायद बारम्बार मुझे चूमना, बाँहों में भरना, गले लगाना चाहती थीं, पर न जाने लोगों के सामने उन्हें स्वयं ही संकोच हो उठा, या किसी और बात से मन कड़वा हो गया, या समझ गईं कि मैं शर्मिंदा हो रहा हूँ, बस वह जल्दी-जल्दी तुशार और उसकी पत्नी के सामने झुकीं और बाहर चल दीं। मैं खड़ा रहा।

"Mais suiver donc votre mere." अन्तनीना वसील्येव्ना बोलीं। "il n'a pas de coeur cet enfant !"*

तुशार ने जवाब में कंधे बिचका दिए, निस्संदेह इसका अर्थ था : "आखिर मैं इसे नौकर यों ही तो नहीं समझता।"

आज्ञापालन करते हुए मैं माँ के पीछे-पीछे सीढ़ियाँ उतरने लगा। हम बाहर निकल आए। मैं जानता था कि वे सब अब खिड़की से झाँक रहे हैं। माँ गिरजे की ओर मुड़ीं और तीन बार ज़मीन तक झुककर सलीब का चिन्ह बनाया। उनके होंठ काँप रहे थे। घंटे का नाद गूँज रहा था। वह मेरी ओर मुड़ीं, उनसे रहा न गया, दोनों हाथ मेरे सिर

---

* माँ को छोड़ने जाओ न... कैसा निर्मम लड़का है! (फ्रांसीसी)



पर रख दिए और रो पड़ी।

"माँ, बस करिए न... शर्म आती है... वे सब खिड़की से देख रहे हैं..."

उन्होंने झटके से सिर उठाया और जल्दी-जल्दी बोलने लगीं :

"हे भगवान... भगवान तेरी रक्षा करे.... हे देवदूत, हे माता मरियम, ईसा के प्यारे संत निकोलस रक्षा करो... हे भगवान, हे भगवान!" वह जल्दी-जल्दी बोलती जा रही थीं और मेरे ऊपर ज़्यादा से ज़्यादा सलीब के निशान बनाने की कोशिश कर रही थीं। "मेरे लाल, मेरे लाड़ले! ठहर तो, मेरी आँख के तारे..."

उन्होंने जल्दी से जेब में डाल डाला और रूमाल निकाला, नीला सा चौखानेदार रूमाल था और उसे सिरे पर कसकर गाँठ बँधी हुई थी। वह गाँठ खोलने लगीं, पर गाँठ खुलती ही न थी।

"अच्छा, लो रूमाल समेत ही रख लो, साफ है, काम आ जाएगा। क्षमा करना, बेटा, ज़्यादा तो मेरे पास हैं ही नहीं,... लाल।"

मैंने रूमाल ले लिया, कहना चाहता था कि "हमें श्रीमान तुशार और अन्तनीना



वसील्येव्ना से सब कुछ मिलता है और हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं", पर अपने को रोक लिया और रूमाल रख लिया।

आख़िर वह चली गईं। मेरे लौटने से पहले ही काउंटों और सीनेटरों के बच्चे सारे माल्टे और प्रियानिक खा गए थे। बीस-बीस कोपेक के चार सिक्के लम्बेर्त ने तुरंत मुझसे छीन लिए, इन पैसों से लड़कों ने पेस्टरियाँ और चाकलेट खरीदे, मुझे दिए तक नहीं।

पूरे छह महीने बीत गये। अक्तूबर का महीना आया, तेज ठंडी हवाएँ चलने लगीं, दिन-दिन भर पानी बरसता रहता। मैं माँ को बिल्कुल भूल ही चुका था। ओह, तब मेरे हृदय में घृणा घर कर चुकी थी, मुझे सबसे घृणा थी, घोर घृणा; मैं अभी भी तुशार के कपड़ों पर ब्रुश करता था, पर रोम-रोम से उससे घृणा करता था और मेरी यह घृणा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। तभी एक दिन उदासी भरी संध्या के झुटपुटे में मैं अपने बक्से में कुछ ढूँढ़ रहा था और सहसा मुझे एक कोने में वह सादा सा नीला रूमाल दिखा। मैंने जैसे उसे बक्से में डाल दिया था, वैसे ही वह पड़ा हुआ था।



मैंने उसे निकाला और कुछ कौतूहल के साथ देखने लगा, रूमाल के सिरे पर अभी तक गाँठ का निशान बना हुआ था, सिक्कों का गोल छाप तक साफ नज़र आ रही थी। मैंने रूमाल वापस रख दिया और बक्शा नीचे खिसका दिया। यह त्योहार से पहले के दिन की बात थी, तभी गिरजे में जगराते की पूजा का घंटा बजा। सभी लड़के दोपहर के खाने के बाद ही अपने-अपने घर जा चुके थे। इस बार अकेला लम्बेर्त ही स्कूल में रह गया था, न जाने क्यों उसे लिवाने कोई नहीं आया था। वह अभी भी मुझे पहले की तरह पीटा करता था, पर अब बहुत कुछ मुझे बताने लगा था और उसे मेरी जरूरत थी। हम सारी शाम लेपाझ* की पिस्तौलों की बातें करते रहे, जो हम दोनों में से किसी ने भी देखी नहीं थीं और चेर्केसों** की तलवारो की बातें, कि क्या धार होती है उनकी, कि अगर अपना एक दस्यु गिरोह बना लिया जाए तो कितना अच्छा रहे... दस बजे हम सोने को लेटे; मैंने सिर तक कम्बल ओढ़ा और सिरहाने तले से नीला रूमाल निकाल लिया : घंटे भर पहले मैं न जाने क्यों उसे बक्से में से निकाल

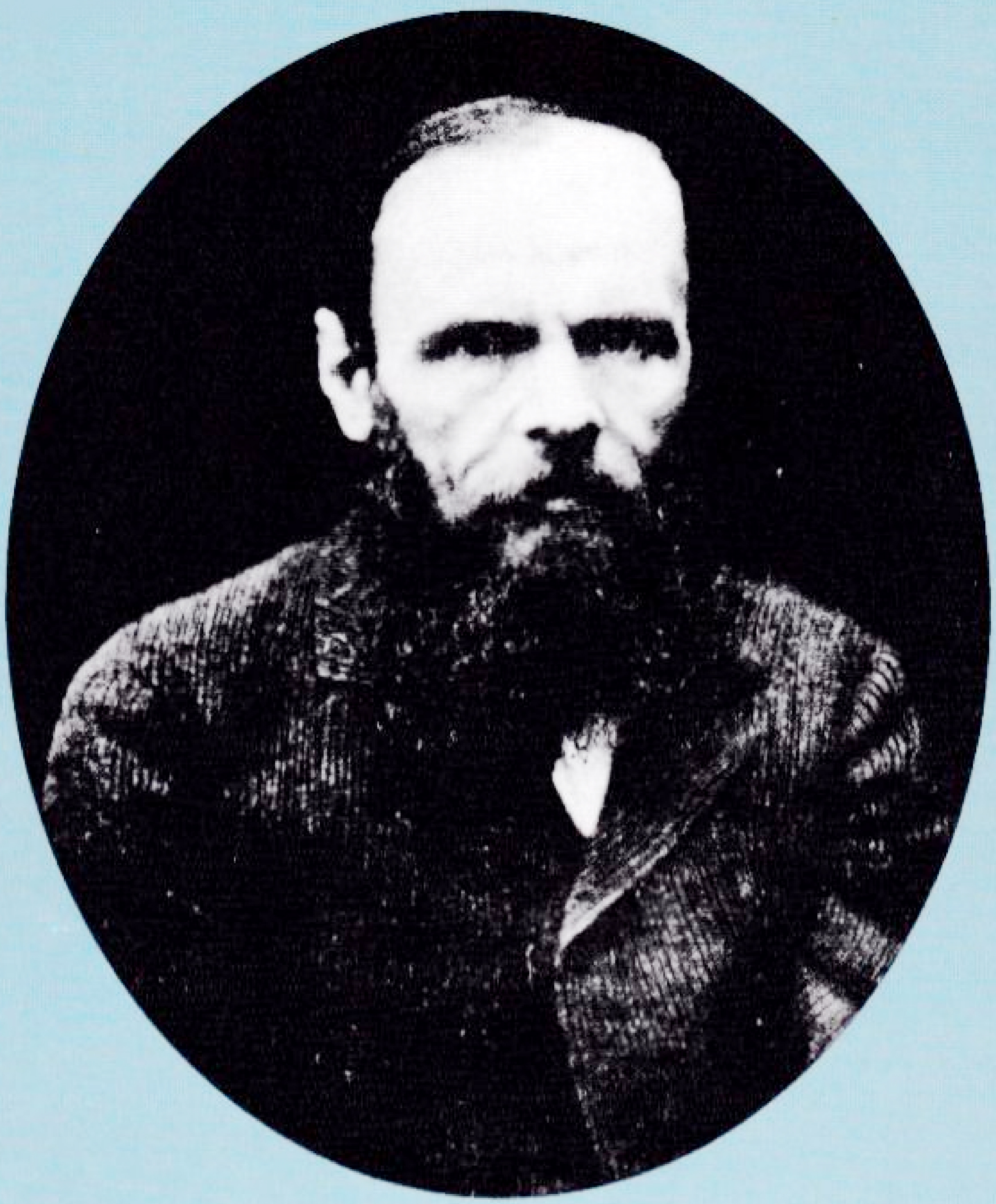
---

* 19वीं सदी में सारे यूरोप में मशहूर पिस्तौलों का निर्माता। -सं०

** काकेशिया में बसने वाली एक जाति। -सं०

लाया था और जब हमने बिस्तर लगाए, तो उसे सिरहाने तले रख दिया था। मैंने रूमाल अपने मुँह से लगा लिया और सहसा उसे चूमने लगा। "माँ, माँ," मैं बुदबुदा रहा था, माँ को याद करके मेरा कलेजा मला जा रहा था। आँखें मूँदता, तो मुझे उसका चेहरा नज़र आता और काँपते होंठ, जब वह गिरजे के सामने सलीब के निशान बना रही थीं और फिर मुझ पर, और मैं कह रहा था : "शर्म आती है, देख रहे हैं"। "माँ, प्यारी माँ, जीवन में एक बार तो तुम मेरे पास आई थीं.. कहाँ हो तुम अब, माँ? तुम्हें अपने बेटे की याद आती है, जिससे मिलने तुम आई थीं? अब एक बार मुझे दिख जाओ, सपने में ही आ जाओ, बस एक बार, और मैं तुम्हें कह दूँ कि तुम्हें कितना प्यार करता हूँ, तुम्हारे गले लग जाऊँ, तुम्हारी नीली आँखें चूम लूँ, तुम्हें कह लूँ कि अब मुझे तुमसे बिल्कुल शर्म नहीं लगती, कि मैं तब भी तुम्हें प्यार करता था, मेरे दिल में तब कैसा दर्द हो रहा था, बस मैं चाकर सा बना बैठा ही हुआ था। माँ, तुम कभी न जान पाओगी कि मुझे तुमसे तब कितना प्यार था! माँ, मेरी माँ, कहाँ हो तुम, सुन रही हो मेरी आवाज? माँ, याद है वह कबूतर गाँव में?.."





फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की

अनुराग ट्रस्ट
लखनऊ